Research Guru
Online Journal of Multidisciplinary Subjects (ISSN : 2349-266X)
UGC Approved Journal No. 63726
Impact Factor:3.021 website: www.researchguru.net
Volume-12, Issue-2, September-2018

छिरारी का प्राचीन मूर्ति–शिल्प : एक सर्वेक्षणात्मक अध्ययन

गोविन्द सिंह दांगी
शोद्यार्थी प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग डॉ. हरीसिह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)
Email-govindkusumghar1988@gmail.com Mob. No.- +91-9098496652

संक्षेपिकाः–
वर्तमान छिरारी नामक ग्राम विन्ध्य पर्वत श्रंखला में स्थित बुन्देलखण्ड के सागर जिले की रहली तहसील के अंतर्गत आता है जो त्रिपुरी से एरण जाने वाले प्राचीन मार्ग के पास स्थित है। इस गॉव का सर्वेक्षण करने से पूर्व मध्य कालीन राजवंशों द्वारा निर्मित बहुसंख्यक प्रतिमाओं तथा मंदिरों के ध्वंशावशेष प्राप्त हुए हैं। पूर्व मध्य युगीन भारतीय स्थापत्य एवं मूर्ति–शिल्प को समृद्ध बनाने का गौरव बुन्देलखण्ड के चंदेल वंश को जाता है। विवेचित क्षेत्र चंदेलों के अधिकार में रहा है। यहां बिखरे पड़े ध्वशावशेष इस ग्राम में चंदेलों के अधिकार के स्पष्ट प्रमाण हैं। ग्राम के सर्वेक्षण से शैव, वैष्णव, सौर जैन आदि धर्मों की बहुसंख्यक मात्रा में प्रतिमाओं तथा मंदिरों के ध्वशावशेषों की प्राप्ति हुई है। शोध की दृष्टि से इस ग्राम के आस–पास के क्षेत्रों में विस्तृत रुप से सर्वेक्षण किया जाये तो वृहद रुप में मूर्तियों, मन्दिरों आदि पुरावशेषों की प्राप्ति होने की संभावना है। जिससे संबंधित क्षेत्र की संस्कृति तथा प्राचीन स्थापत्य मूर्तिकला को समझने में सुविधा होगी।

कुंजी शब्दः– छिरारी, प्रतिमा, भग्नावशेष, अलंकरण इत्यादि।

भारत में देव उपासना की परम्परा अत्यंत प्राचीन है जिसके अनेक साहित्यिक एवं पुरातात्विक प्रमाण प्राप्त होते हैं, मानव ने भिन्न–भिन्न माध्यमों से ईश्वर उपासना की जिसके प्रमाण पाषाण काल से मिलने लगते हैं। भारत में धर्म की प्राचीनता पाषाण काल तक जाती है।[1] मूर्ति निर्माण की परम्परा के स्पष्ट प्रमाण हड़प्पा काल से प्राप्त होते हैं। हड़प्पा सभ्यता से प्राप्त शिवलिंग तथा शिव के विविध रूपों का मुहरों पर अंकन तथा मातृदेवी की मृण मूर्तिओं की प्राप्ति इसके स्पष्ट प्रमाण हैं। हड़प्पा सभ्यता में अनेक केन्द्रों से प्राप्त लिंगाकार पाषाण शिवलिंग पूजा की प्राचीनता के द्योतक हैं। सैंधव–सभ्यता के अवशेषों में मिट्टी की बनी हुई अनेक नारी की मृणमूर्तियां प्राप्त हुई हैं जो सामान्य मूर्तियों से कुछ भिन्न है, इन मूर्तियों से प्रतीत होता है कि इसके द्वारा किसी देवी का अंकन अभीष्ट था।[2] हड़प्पा सभ्यता से लेकर वर्तमान समय तक मूर्ति निर्माण की परम्परा प्रचलित रही है। मूर्ति निर्माण के साहित्यिक प्रमाण पौराणिक ग्रंथों जैसे ब्राह्मण ग्रन्थों, रूपमण्डन, अपराजितपृच्छा आदि स्मृति ग्रन्थों से प्राप्त होते हैं।

पूर्व मध्ययुगीन भारतीय स्थापत्य एवं मूर्ति शिल्प को समृद्ध करने का गौरव बुन्देलखण्ड के चंदेल वंश को है।[3] विवेचित क्षेत्र चंदेलों के अधिकार में रहा है अतः उन्होंने इस क्षेत्र के स्थापत्य एवं मूर्ति शिल्प को समृद्ध करने में विशेष योगदान दिया जिसके स्पष्ट प्रमाण रहली से प्राप्त सूर्य मंदिर से प्राप्त होते हैं। इसी क्रम में शोधार्थी को बुन्देलखण्ड के सागर जिले की रहली तहसील के छिरारी ग्राम के अन्वेषण से प्राप्त प्रतिमाओं एवं मंदिरों के ध्वंशावशेषों से यह प्रतीत होता है कि प्राचीन समय में विवेच्च यह क्षेत्र धार्मिक उपासना का प्रमुख केन्द्र रहा होगा जिसके प्रमाण यत्र–तत्र बिखरे पड़े हैं।

छिरारी ग्राम से अन्वेषित प्रतिमाओं का विवरण :

वर्तमान छिरारी नामक ग्राम सागर जिले की रहली तहसील के अंतर्गत 23^0 35′ उत्तर तथा $79^0$8′ पूर्व में रहली से 12 कि.मी. की दूरी पर सागर–जबलपुर मार्ग पर करकोटिया नाले के किनारे पर स्थित है। यह ग्राम सड़क मार्ग से जुड़ा होने के कारण यहाँ वर्ष भर किसी भी मौसम में आसानी से पहुँचा जा सकता है। इस गांव का सर्वेक्षण करने से पूर्व मध्यकालीन राजवंशों मुख्यताः चन्देलों तथा कल्चुरियों द्वारा निर्मित करवाई गई शैव–वैष्णव तथा सौर धर्म की बहुसंख्यक मात्रा में प्रतिमाओं तथा अनेक मंदिरों के साथ–साथ एक तालाब के अवशेष भी प्राप्त हुये हैं। इस पुरास्थल से खेतों, मकानों की दीवालों एवं घरों के बाड़ों में अनेक कलाकृतियाँ देखने को मिल जाती हैं। ग्रामवासियों के बताये अनुसार मकानों की नींव, एवं कुएँ आदि की खुदाई करते समय तथा खेतों की जुताई करने पर आकस्मिक ऐसी प्रतिमाऐं तथा कलात्मक शिल्पावशेष जमीन से निकल आते हैं। ग्राम में अनेक स्थानों पर मंदिरों के ध्वंशावशेष एवं अधिष्ठान देखे जा सकते हैं। उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि यहाँ प्राचीन काल में एकाधिक मंदिर रहे होंगे।

सर्वेक्षण से प्राप्त प्रतिमाओं का शिल्पशास्त्रीय अध्ययन –

सूर्य प्रतिमा :

सूर्य रात्रि के गहन तिमिर को अपनी तीव्र रश्मियों द्वारा भेध कर संसार को आलोकित कर पृथ्वी को प्रकाशवान, ओजवान बनाते हैं। जहाँ सूर्य के अस्तित्व के बिना पृथ्वी पर मानव जीवन की कल्पना असंभव है, वही सूर्य प्रत्येक जीव–जन्तुओं, पेड़–पौधों एवं मानव–जाति के जीवन चक्र का प्रमुख घटक है।

सूर्य उपासना की परम्परा अत्यंत प्राचीन है जिसके अनेक साहित्यिक एवं पुरातात्विक प्रमाण प्राप्त होते हैं। हड़प्पा सभ्यता से लेकर वर्तमान काल तक सूर्य उपासना अलग–अलग माध्यमों से प्रलचित रही है। हड़प्पा सभ्यता में जहाँ उन्हें प्रतीक के रूप में पूजा जाता था वही बाद के काल में इन्हें मूर्ति के रूप में पूजा जाने लगा। गुप्तकाल तक आते–आते मंदिर के निर्माण के स्पष्ट प्रमाण प्राप्त होने लगते है। तथा भारत में अनेक स्थानों पर सूर्य मंदिरों का निर्माण किया गया जिसमें 'कोणार्क' का सूर्य मंदिर प्रमुख है। सूर्योपासना का प्राचीनतम साहित्यिक साक्ष्य ऋग्वेद के रुप में उपलब्ध है, इसमें उन्हें पापनाशक, विष को दूर करने वाला, शारीरिक व्याधियों को हरने वाला बतलाया गया है।[4]

छिरारी ग्राम में प्रवेश करते ही सिंहवाहनी मंदिर के पास दसवीं शताब्दी ईस्वी की स्थानक सूर्य प्रतिमा स्थित

है।[5] प्रतिमा द्विभुजी है, सिर व दोनों भुजायें भग्न हैं। सूर्य ग्रवेयर, हार, यज्ञोपवीत, कंकण, धोती, वनमाला, मेखला, अधोवस्त्र आदि आभूषणों से सुसज्जित हैं, सूर्य दोनों पैरों में उपान्ह धारण किये हैं, दोनों चरणों के पास भू–देवी महाश्वेता बीचों–बीच उत्कीर्ण हैं। सूर्य सप्तरथ पर आरुढ़ हैं जिसे सात अश्व खींच रहे हैं। सूर्य के दोनों ओर उनकी दोनों पत्नि संध्या और छाया त्रिभंग मुद्रा में प्रदर्शित हैं। दोनों के सुंदर केश विन्यास, गले में हार, कर्णाभूषण, बाजूबंध कड़े तथा कटिबंध धारण किये हुए हैं। सूर्य के दोनों ओर हाथ जोड़े अनुचर खड़े हैं। प्रतिमा विज्ञान के अनुसार सूर्य के दोनों ओर अनुचर शोभा पाते हैं। बायीं ओर सुन्दर रुप वाला दण्ड नामक अनुचर रहता है और दाहिनी ओर पिंगल नामक सेवक रहता है।[6] प्रतिमा की (ऊँचाई 16 इंच, चौड़ाई 21 इंच)।

छिरारी से ही बीजासेन माता के मंदिर की दीवार में प्रदर्शित सूर्य प्रतिमा प्राप्त हुई है इसमें सूर्य स्थानक मुद्रा में है। सूर्य के दोनों हाथों में सनाल कमल हैं। किरीट मुकुट कुण्डल, हार,

कर्णाभूषण, कटिसूत्र आदि धारण किये हैं। सूर्य के पैरों के मध्य भू–देवी महाश्वेता खड़ी हैं तथा दोनों ओर अनुचर हाथ जोड़े खड़े हैं। सूर्य रूथारूढ़ है रथ को तीन अश्व खीच रहे हैं। रूपमण्डन में भी सूर्य की प्रतिमा रथ सहित बनाने का विधान है। प्रतिमा की (ऊँचाई 18 इंच, चौड़ाई 11 इंच)।

योग विष्णु :

छिरारी ग्राम से लगभग 10वीं शताब्दी ईस्वी की योगविष्णु की एक प्रतिमा एक मंदिर में

सुरक्षित है।[7] इसी प्रकार की प्रतिमा सागर विश्वविद्यालय के गौर पुरातत्व संग्राहालय में संग्रहीत प्रतिमा भग्नावस्था में है जिसका सिर तथा दोनों हाथ विष्णु के गले में हार, उपवीत, वनमाला है, जिसका के नीचे लटकता हुआ प्रदर्शित है तथा अधोवस्त्र अधोवस्त्र विष्णु का पीताम्बर है जिससे इनका रहता है।[8] प्रतिमा की (ऊँचाई 22 इंच, चौड़ाई 29 इंच, है। छिरारी से प्राप्त पूर्ण रुप से भग्न हैं निचला छोर आसन धारण किये हैं। कटिप्रदेश ढँका इंच)।

हनुमान प्रतिमा :

पूर्व मध्यकालीन शासकों ने हनुमान की प्रतिमा के निर्माण में अधिक रुचि दिखाई। मध्यप्रदेश के कल्चुरि नरेशों के सिक्कों पर भी हनुमान की आकृति उत्कीर्ण है।[9] इस काल की प्रतिमाओं में हनुमान को वानर का शरीर, एक हाथ में गदा तथा दूसरे में पर्वत चट्टान लिए दिखाया है।

छिरारी ग्राम के हनुमान मंदिर के पास एक वृक्ष के नीचे हनुमान की सुंदर प्रतिमा वीरभाव में प्रदर्शित है, जिनके

सिर पर मुकुट हार, ग्रैवेय उपवीत कटिबंध, भुजबंध, कंकण धोती तथा अधोवस्त्र सुशोभित हैं। हनुमान का बांया हाथ वक्ष के समीप व्याख्यान मुद्रा में हैं, दायां हाथ भग्न है तथा दोनों पैरों के घुटने के नीचे का भाग भी भग्न है, उनके कमरपट्ट में कटार है तथा पृष्ठ भाग में पूँछ का भाग स्पष्ट दृष्टव्य है, स्थानीय लोगों ने प्रतिमा पर सिंदूर आदि का लेपन

कर दिया है। आज–पास के क्षेत्र से भी इसी प्रकार की प्रतिमाऐं देखी जा सकती है। प्रतिमा की (ऊँचाई 53 इंच, चौड़ाई 14 इंच)।

गणेश प्रतिमा :

पौराणिक कथाओं में गणपति शिव के पुत्र कहे गये है, गणपति का उल्लेख गणेश पुराण, शिव पुराण, अग्नि पुराण, वृहत् संहिता, विष्णु धर्मोत्तर, रुपमण्डमन आदि स्मृति ग्रन्थों में किया गया है। भारतीय कला में

शिव–परिवार में अथवा गणेश की एकांकी प्रतिमा निर्मित होती रही हैं।[10] परवर्ती गुप्तकाल में विशेष रुप से मध्यकाल में गाणपत्य प्रतिमाओं की लोकप्रियता बहुत व्यापक थी। नृत्यगणेश मूर्ति का निर्माण पूर्व गुप्तकाल में आरम्भ हुआ, गुप्तकाल में इनका प्रचलन बढ़ने लगा और यह मध्ययुग में बहुत व्यापक हो गया।[11] प्रारम्भ में गणेश प्रतिमाऐं शिव परिवार के साथ निर्मित होती थी किन्तु पूर्व मध्यकाल तक आते–आते गणेश स्वतंत्र प्रतिमा एवं प्रधान देवता के रुप में निर्मित की जाने लगी।

छिरारी ग्राम से सर्वेक्षण के द्वारा एक स्वतंत्र गणेश प्रतिमा प्राप्त हुई प्रतिमा चतुर्भुजी है। भारतीय शिल्प संहिता के अनुसार गणेश का सामान्य स्वरुप इस प्रकार है सूढ़ युक्त हस्ति का मुख, बड़ा पेट, सिंदूर वर्ण टूटा हुआ एक दंत प्रदर्शित है। कहीं–कहीं स्थानक मूर्तियाँ भी पायी जाती हैं।[12] गणेश पद्मासन में बैठे हैं, दांया नीचे का हाथ अभय मुद्रा में हैं, तथा ऊपर के हाथ में परशु उल्लिखित प्रतिमा में हैं, बांये दोनों हाथों की स्थिति अस्पष्ट है। सूंड वामावर्त है। इसी प्रकार ग्राम से एक अन्य गणेश प्रतिमा का भग्न सिर प्राप्त हुआ है जिसमें गणेश के सूपकर्ण लम्बोदर, एक दन्त सूड़ की आकृति वामावर्त प्रदर्शित किया गया है।

नवग्रह खण्ड :

भारतीय धर्म एवं संस्कृत में पारलौकिक सुख के लिए अनेक सौंदर्य सम्पन्न अप्सराओं की कल्पना की गई, जो

इस लोक में पुण्य अर्पित कर स्वर्ग में जाकर इच्छित भौतिक सुख भोग का साधन बनती हैं।[13] ग्राम से एक नवग्रह खण्ड का भग्न भाग प्राप्त हुआ है जिसमें एक सुन्दरी त्रिभंग मुद्रा में खड़ी है स्त्री विविध आभूषणों से अलंकृत है। स्त्री के केशों को सुन्दर ढंग से बांधा गया है, कानों में बड़े–बड़े कुण्डल, ग्रेवेयर, कटीसूत्र आदि अलंकरणों से अलंकृत है। स्त्री के हाथों में कोई वस्तु है जो स्पष्ट नहीं है। सम्भवतः कोई यंत्र। यह शिलाफलक नवग्रह सिरदल का टूटा हुआ भाग है, जिसमें स्त्री के दांयी ओर दो ग्रहों का अंकन है, जिनके बांये हाथ में कमण्डल है तथा दांया हाथ वरद मुद्रा में है ग्रहों को त्रिभंग मुद्रा में विविध अलंकरणों से अलंकृत प्रदर्शित किया गया है। स्त्री के बांयी ओर राहु केतु हाथ जोड़े खड़े है। नीचे बायीं ओर एक बासुरी वादक प्रदर्शित है तथा दांयी ओर सप्तमात्रकाओं को प्रदर्शित किया गया शिलाफलक के भग्न होने के कारण मात्र दो मात्रकाऐं दृष्टव्य है जिनमें चामुण्डा आश्चर्य मुद्रा में प्रदर्शित है। इसके साथ ही ग्राम से स्वतंत्र स्त्री प्रतिमाऐं प्राप्त हुई है जो विविध अलंकरणों से अलंकृत, त्रिभंग मुद्रा में प्रदर्शित है।

नदी देवी :

पौराणिक ग्रन्थों के आधार पर मंदिर निर्माण में मंदिर के प्रवेश द्वार पर दोनों ओर नदी देवियों गंगा–यमुना को

प्रदर्शित किया जाता है, जिनमें मकर वाहिनी गंगा तथा कच्छप वाहिनी यमुना अपने–अपने वाहन पर अनुचरों सहित प्रदर्शित की जाती हैं। इनको स्थापित करने का उद्देश्य मानव मात्र की पवित्रता से रहा होगा। भूमरा के गुप्तकालीन शिव मंदिर में द्वार स्तम्भों के दाहिने मकरवाहिनी गंगा तथा बांये कूर्मवाहिनी यमुना की मूर्तियाँ उत्कीर्ण है। ग्राम से प्राप्त स्तम्भों पर नदी देवीयों का अलंकरण है ये स्तम्भ विभिन्न अलंकरणों से अलंकृत है, नदी देवी को हाथ पें कलश लिए हुये विभिन्न अलंकरणों से अलंकृत प्रदर्शित किया गया है, देवी के दांयी ओर एक स्त्री छत्र लिए खड़ी है, जिनके ऊपर भार वाहक को प्रदर्शित किया गया है जो स्तम्भ का सम्पूर्ण भार अपने दोनों हाथों पर लिए प्रदर्शित है। इसके ऊपर एक पुरुष को शहनाई बजाते दिखाया गया है जो मानों स्वागत के लिए शहनाई बजा रहा है। एक अन्य स्तम्भ में भार वाहक के ऊपर तीन युगल जोड़ियां प्रदर्शित हैं, जिन्हें एक दूसरे को आलिंगन मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है।

अन्य प्रतिमाऐं एवं स्थापत्य सम्बन्धी भग्नावशेष :

पुराणों में नागों एवं सर्पों का विशद् वर्णन है। वैष्णव धर्म से सम्बन्धित पुराणों में नागों के दो रूप प्राप्त होते हैं। प्रथम रुप प्रमुख देव तथा द्वितीय गौण रूप। इसी गाँव में

स्थित नवीन हनुमान मंदिर की जगति पर लगी एक शिलाफलक में नाग–नागी प्रतिमा को प्रदर्शित किया गया हैं। जिसमें नाग–नागी युगल एक–दूसरे से लिपटे हुये हैं। वर्णित प्रतिमाओं के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रतिमाओं तथा स्थापत्य सम्बन्धी अवशेषों की भी प्राप्ति ग्राम में सर्वेक्षण के द्वारा हुईं है जिनमें परिकर के मध्य भाग में द्विभुजी वराही प्रतिमा, शिव के ऊपर पैर रखे, विविध आयुधों को धारण किये हुए चतुर्भुजी चामुण्डा, शव तथा प्रेत सहित चामुण्डा, आठ भुजी दुर्गा प्रतिमा एक अलंकृत गवाक्ष से झांकता मानव के साथ–साथ आमलक, भारवाहक प्रवेश–द्वार के दोनों ओर स्थापित होने वाली नदी देवियों के स्तम्भ आदि दृष्टव्य हैं।

निष्कर्षः–

स्थापत्य की दृष्टि से यह पुरास्थल बहुत महत्वपूर्ण है, ग्राम में सर्वेक्षण के द्वारा एक से अधिक मंदिरों के ध्वंशावशेष दृष्टव्य हैं, वर्तमान में मंदिरों के मात्र ध्वंशावशेष प्राप्त हुये हैं किन्तु प्राप्त प्रमाणों के आधार पर एकाधिक मंदिर होने का अनुमान लगाया जा सकता है, प्राप्त ध्वंशावशेषों में आमलक, भारवाहक प्रवेश–द्वार के दोनों ओर स्थापित होने वाली नदी देवियों के स्तम्भ आदि प्रमुख हैं। इस स्थल के सर्वेक्षण से प्राप्त प्रतिमाओं एवं स्थापत्य संबंधित अवशेषों का अध्ययन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यह क्षेत्र पूर्व मध्य कालीन राजवंशों के धार्मिक उपासना का केन्द्र रहा होगा। मुख्य रूप से यह क्षेत्र चन्देलों तथा कल्चुरियों के अधिकार क्षेत्र में रहा होगा। प्राप्त प्रतिमाओं तथा ध्वंशावशेषों के आधार पर यह अनुमान भी लगाया जा सकता है कि पूर्व मध्य कालीन राजवंशों द्वारा इस क्षेत्र विशेष पर विविध धर्मों के अनुयाइयों को संरक्षण प्रादान किया गया होगा। स्थापत्य सम्बन्धी अवशेषों को देख कर ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्वमध्य कालीन राजवंशों के संरक्षण के बाद भी इस क्षेत्र में बनने वाले मंदिरों में स्थानीय प्रभाव को भी महत्व दिया गया होगा, यही कारण है कि विवेच्च क्षेत्र की कला परम्परा में भी पूर्व मध्यकालीन स्थापत्य एवं मूर्ति शिल्प का प्रभाव परिलक्षित होता है।

यदि इस स्थान पर गहन शोध कार्य किया जाए तो यह सम्भावना व्यक्त की जा सकती है कि इस क्षेत्र विशेष पर पूर्वमध्य कालीन स्थापत्य एवं मूर्तिशिल्प से सम्बन्धित अन्य कई महत्वपूर्ण अवशेषों की भी प्राप्ति हो सकती हैं, जिनके माध्यम से इस क्षेत्र के तत्कालीन समय के समाज तथा धर्म के विषय में जानकारी प्राप्त करना सरल हो जाएगा तथा संबंधित क्षेत्र की संस्कृति तथा प्राचीन स्थापत्य मूर्तिकला को समझने में सुविधा भी होगी।

संदर्भ :

1. शर्मा, माधुरी, मध्यप्रदेश की विलक्षण प्रतिमायें, पुरातन, vol 8, 1991, पृ. 74
2. श्रीवास्तव, बृजभूषण प्राचीन भारतीय प्रतिमा–विज्ञान एवं मूर्ति–कला, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2015 पृ.1
3. सहाय, सच्चिदानंद, मंदिर स्थापत्य का इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1989, पृ. 47
4. दुबे, नागेश, मोहनलाल चढ़ार, एरण : एक परिचय, माँ नर्मदा साहित्य सदन, अमरकंटक (म.प्र) 2016, पृ. 37
5. मिश्र, मनीष, सागर जिले का सांस्कृतिक इतिहास, सी.पी.जी. पब्लीकेशन, सागर, 1998, पृ. 114
6. मिश्र, इन्दुमती, प्रतिमा–विज्ञान, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल, 2009, पृ. 283
7. मिश्र, मनीष पूर्वोल्लिखित, पृ. 86
8. मिश्र, इन्दुमती, पूर्वोल्लिखित, पृ. 138
9. उपाध्याय, वासुदेव, प्राचीन भारतीय मूर्ति–विज्ञान, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 1982, पृ. 129
10. उपाध्याय, वासुदेव, पूर्वोल्लिखित, पृ. 125
11. दुबे, नागेश, पूर्वोल्लिखित, पृ. 36
12. सोमपुरा प्रभाशंकर ओ; भारतीय शिल्प संहिता, सोमैया पब्लिकेशन्स, प्रा. लि. नई दिल्ली, 1975, पृ. 164
13. प्रताप, रीता, भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास,राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2006, पृ. 552